संभू नाथ झा

बनाम

केदार प्रसाद सिन्हा एवं अन्य

24 *जनवरी,* 1972

[जे. एम. शेलाट तथा एच. आर. खन्ना, न्यायमूर्तिगण]

न्यायालय की अवमानना — समाचार पत्र में आयोगों की जाँच अधिनियम, 1952 की धारा 3 के अंतर्गत जारी अधिसूचना का प्रकाशन, जिसके द्वारा बिहार सरकार के मंत्रियों के विरुद्ध जाँच संस्थित की गई — अधिसूचना में बिहार सरकार के एक मंत्री के विरुद्ध आरोप कि उसने अधिकारियों की सलाह के विरुद्ध आपराधिक वाद की अभियोजन वापसी का आदेश दिया और जब विचारण न्यायालय ने अभियोजन वापसी की अनुमति देने से इंकार किया तो उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर कराने का आदेश दिया और इस प्रकार न्याय के प्रवाह में हस्तक्षेप किया —अभियुक्तों द्वारा भी उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण दायर — अधिसूचना के समाचार पत्र में प्रकाशन के समय पुनरीक्षण उच्च न्यायालय में लंबित — क्या ऐसा प्रकाशन न्यायालय की अवमानना बनता है — क्या आयोगों की जाँच अधिनियम की धारा 3(1) सरकार को राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित करना अनिवार्य बनाती है।

अपीलकर्ता, जो बिहार राज्य सरकार में मंत्री था, ने बिहार राजपत्र असाधारण दिनांक 12 मार्च, 1968 में प्रकाशित अधिसूचना की एक प्रति प्रेस को जारी की, जिसके द्वारा, अन्य बातों के साथ, राज्य सरकार के एक पूर्व मंत्री के विरुद्ध जाँच संस्थित की गई थी। अधिसूचना से संलग्न अनुसूची में आरोप संख्या जे-4 के अनुसार, उक्त मंत्री ने अपने आधिकारिक पद और शक्ति का दुरुपयोग करते हुए दंगा और हत्या के एक गंभीर वाद में न्याय के प्रशासन में अनावश्यक हस्तक्षेप किया। यह आरोप लगाया गया कि उसने जिला दंडाधिकारी और विधि सचिव की राय के विरुद्ध दो अभियुक्तों के विरुद्ध अभियोजन वापसी का आदेश दिया और बाद में, जब विचारण न्यायालय ने अभियोजन वापसी के आवेदन को अस्वीकार कर दिया, तो उसने उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर करवाई। पटना से प्रकाशित 'द सर्चलाइट' ने अपने 14 मार्च, 1968 के अंक में अपीलकर्ता द्वारा जारी अधिसूचना की प्रति, आरोपों की अनुसूची सहित, प्रकाशित की। 25 मार्च, 1968 को उक्त दो अभियुक्तों द्वारा उच्च न्यायालय में कई व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनमें अपीलकर्ता तथा 'सर्चलाइट' के मुद्रक

एवं प्रकाशक सम्मिलित थे, न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही प्रारंभ करने हेतु आवेदन दायर किया गया। आवेदकों का यह तर्क था कि उनके तथा राज्य सरकार द्वारा विचारण न्यायालय के अभियोजन वापसी की अनुमति से इंकार करने वाले आदेशों के विरुद्ध दायर पुनरीक्षण उच्च न्यायालय में प्रकाशन के समय लंबित थे और चूँकि अधिसूचना की अनुसूची में आरोप संख्या जे-4 उक्त पुनरीक्षणों के विषय से संबंधित था, इसलिए यह प्रकाशन न्याय के प्रवाह में हस्तक्षेप था क्योंकि इससे उनके विरुद्ध जनमानस पूर्वाग्रही हो गया।

अभिनिर्धारित किया गया : न्यायालयों को उस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति है जो ऐसा कार्य करता है या ऐसा लेख प्रकाशित करता है जो किसी न्यायालय या न्यायाधीश को अवमानना में लाने, उसकी प्राधिकारिता को कम करने, या न्याय के प्रवाह अथवा विधि के समुचित प्रशासन में बाधा डालने की प्रवृत्ति रखता हो। चूँकि अवमाननाकर्ता का ऐसा परिणाम उत्पन्न करने का आशय न्यायालय की अवमानना का आवश्यक तत्व नहीं है और यह पर्याप्त है कि उसका कृत्य न्याय के समुचित प्रवाह और विधि के प्रशासन में बाधा डालने या हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखता हो, इसलिए अनेक मामले ऐसे होंगे जहाँ आरोपित अवमानना तकनीकी प्रकृति की होगी। ऐसे मामलों में न्यायालय अवमानना की कार्यवाही में सावधानी और न्यायिक संयम का प्रयोग करेगा। न्यायालय को परिवेशीय परिस्थितियों और मामले के भौतिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उनके समग्र अवलोकन से यह निष्कर्ष निकालना होगा कि क्या किसी उद्दंड आचरण या अन्य पर्याप्त कारण से संबंधित व्यक्ति को न्यायालय की अवमानना के लिए दंडित किया जाना चाहिए। [189 ई-जी]

राज्य बनाम ग्रे (1900] 2 क्यू.बी. 36; ई.एम.एस. नाम्बूद्रिपाद बनाम टी. एन. नाम्बियार, [1970] एस.सी.सी. 325; रे: पी. सी. सेन, [1969] 2 एस.सी.आर. 649; देवी प्रसाद शर्मा एवं अन्य बनाम द किंग एम्परर, एल.आर. 70 आई.ए. पृष्ठ 224 पर; लीगल रिमेम्ब्रांसर बनाम मतीलाल घोष एवं अन्य, आई.एल.आर. 41, कलकत्ता 173, लागू किया गया।

आयोगों की जाँच अधिनियम की धारा 3(1) का साधारण पाठ यह स्पष्ट करता है कि जाँच आयोग की नियुक्ति करने वाली अधिसूचना का राजपत्र में प्रकाशन अनिवार्य है। यह एक अनिवार्य आवश्यकता है और इससे छूट नहीं दी जा सकती। जाँच आयोग किसी सार्वजनिक महत्व के निश्चित विषय की जाँच के उद्देश्य से नियुक्त किया जाता है। वर्तमान मामले में विभिन्न आरोपों वाली अनुसूची दिनांक 12 मार्च, 1968 की अधिसूचना का भाग थी

और उसने सार्वजनिक महत्व के निश्चित विषय निर्दिष्ट किए थे जिनकी जाँच आयोग द्वारा की जानी थी। अतः अनुसूची का राजपत्र में प्रकाशन वैधानिक आवश्यकता का अनुपालन माना जाएगा। राजपत्र में प्रकाशन का उद्देश्य द्विविध है — अधिसूचना का प्रचार-प्रसार करना तथा उसके विषयवस्तु की प्रामाणिकता प्रदान करना, यदि उसके विषय में कोई विवाद उत्पन्न हो। [190 जी-एच]

वर्तमान मामले में अधिसूचना के किसी भाग पर विशेष बल नहीं दिया गया, क्योंकि राजपत्र में मुद्रित पूरी अधिसूचना ही समाचार पत्र को प्रकाशन हेतु दी गई थी। इसके अतिरिक्त, आयोग के समक्ष जाँच का विषय, जैसा कि आरोप संख्या जे-4 में वर्णित है, यह था कि क्या संबंधित मंत्री द्वारा विधि सचिव और जिला दंडाधिकारी की अनुशंसा के विरुद्ध दो अभियुक्तों के विरुद्ध अभियोजन वापसी का आदेश देने में आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया गया था। जबकि पटना उच्च न्यायालय में लंबित आपराधिक पुनरीक्षण याचिकाओं में निर्णय का प्रश्न यह था कि अभियोजन वापसी के आवेदन को खारिज करने वाला दंडाधिकारी का आदेश विधि के विपरीत था या नहीं। दोनों विषय भिन्न और पृथक थे, समान नहीं। यह संभव है कि कुछ विषय जो आपराधिक पुनरीक्षणों से जुड़े थे, आयोग की जाँच के विषय बने हों, किंतु उससे न्यायालय की अवमानना की देयता उत्पन्न नहीं होती। [191 सी-डी]

जगन्नाथ राव बनाम उडीसा राज्य, [1968] एस.सी.आर. 789 — संदर्भित।

अतः उच्च न्यायालय का निर्णय निरस्त किया जाना चाहिए और अपीलकर्ता के विरुद्ध न्यायालय की अवमानना के लिए जारी नियम समाप्त किया जाना चाहिए। [192 सी]

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या 30 / 1969.

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 12 अगस्त, 1968 के निर्णय एवं आदेश, मूल आपराधिक विविध याचिका संख्या 30/1968 से विशेष अनुमति द्वारा अपील।

अपीलकर्ता की ओर से : *बासुदेव प्रसाद सिन्हा तथा बी. पी. झा।*

न्यायालय का निर्णय **न्यायमूर्ति खन्ना** द्वारा दिया गया : यह संभू नाथ झा द्वारा विशेष अनुमति से दायर अपील है, जिसे पटना उच्च न्यायालय ने दो अन्य व्यक्तियों के साथ न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराया था। चूँकि उच्च न्यायालय की दृष्टि में अवमानना तकनीकी प्रकृति की थी, इसलिए अवमाननाकर्ताओं को चेतावनी देकर छोड़ दिया गया।

2 जनवरी, 1966 को लच्छो पासवान द्वारा पुलिस में प्रतिवेदन दर्ज कराई गई कि जब वह और उसका भाई द्वारका पासवान जमुई बाजार जा रहे थे, तब प्रतिवादी केदार प्रसाद ने उन्हें गाली दी और अन्य लोगों को द्वारका पासवान पर हमला करने के लिए उकसाया। इसके बाद द्वारका पासवान पर हमला किया गया और उसे घेर लिया गया। अर्जुन पांडे ने द्वारका पासवान के सीने में *सैफ* घोंप दिया, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। हमले का कारण यह बताया गया कि लच्छो पासवान और द्वारका पासवान ने मुखिया के चुनाव में केदार प्रसाद के विरुद्ध मतदान किया था। पुलिस ने उक्त प्रतिवेदन के आधार पर जाँच कर भारतीय दंड विधान की धारा 148 और 302 सहपठित धारा 149 के अंतर्गत कई व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप पत्र दायर किया। केदार प्रसाद और अर्जुन पांडे के विरुद्ध आरोप पत्र दायर नहीं किया गया। समर्पण कार्यवाही के दौरान, विचारण हेतु अभिसंपन्न करने वाले दंडाधिकारी ने केदार प्रसाद और अर्जुन पांडे को अभियुक्त के रूप में 15 मई, 1966 के लिए तलब करने का आदेश दिया।

केदार प्रसाद और अर्जुन पांडे ने विचारण हेतु अभिसंपन्न करने वाले दंडाधिकारी के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण दायर किया, किंतु अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, मुंगेर द्वारा दिनांक 5 मई, 1967 के आदेश से उसे खारिज कर दिया गया। यह माना गया कि केदार प्रसाद और अर्जुन पांडे को विधिवत तलब किया गया था।

पुनरीक्षण खारिज होने के पश्चात, सहायक जिला अभियोजक द्वारा 18 सितंबर, 1967 को दंडाधिकारी के न्यायालय में यह कहते हुए आवेदन दायर किया गया कि राज्य और सार्वजनिक नीति की दृष्टि से उनके विरुद्ध अभियोजन चलाना अनुपयुक्त है, अतः अभियोजन वापसी की जाए। शिकायतकर्ता एवं अन्य के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, विचारण हेतु अभिसंपन्न करने वाले दंडाधिकारी ने 6 अक्टूबर, 1967 को उक्त आवेदन खारिज कर दिया और कहा कि अभियोजन वापसी का आवेदन न्याय के सामान्य प्रवाह में दुरुपयोग और अनुचित हस्तक्षेप है।

6 अक्टूबर, 1967 के उक्त आदेश के विरुद्ध दो पुनरीक्षण दायर किए गए — एक बिहार राज्य द्वारा और दूसरा आबनी कुमार मंडल द्वारा। दोनों पुनरीक्षणों को उच्च न्यायालय ने 30 नवंबर, 1967 को स्वीकार किया।

उपरोक्त आपराधिक पुनरीक्षणों की लंबित अवस्था में, बिहार के राज्यपाल ने दिनांक 12 मार्च, 1968 की अधिसूचना द्वारा आयोगों की जाँच अधिनियम, 1952 की धारा 3(1952 का अधिनियम 60) के अंतर्गत माननीय श्री टी. एल. वेंकटरमण अय्यर, सेवानिवृत्त

न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय, की अध्यक्षता में जाँच आयोग नियुक्त किया, ताकि बिहार राज्य में पूर्व में मुख्यमंत्री और मंत्री पद पर रहे 14 व्यक्तियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की जाँच की जा सके। जिन व्यक्तियों के विरुद्ध जाँच का आदेश दिया गया, उनमें श्री हसीबुर रहमान भी सम्मिलित थे, जो 16 मार्च, 1967 से 28 जनवरी, 1968 तक मंत्री रहे थे। जिन आरोपों की जाँच की जानी थी, वे अधिसूचना से संलग्न अनुसूची में उल्लिखित थे। श्री हसीबुर रहमान के विरुद्ध आरोप संख्या जे-4 इस प्रकार था :

> श्री केदार प्रसाद सिन्हा तथा श्री अर्जुन पांडे नौ अन्य व्यक्तियों के साथ दंगा एवं हत्या के एक गंभीर मामले में अभियोजन का सामना कर रहे थे, जो मुंसिफ-दंडाधिकारी , जमुई के समक्ष लंबित था। उन्होंने अपने अभियोजन के विरुद्ध अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, मुंगेर के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात् 6 जून, 1967 को उन्होंने तत्कालीन विधि मंत्री श्री हसीबुर रहमान के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिन्होंने यह निर्देश दिया कि विधि सचिव मामले की जाँच कर प्रतिवेदन दें और इस बीच जिला दंडाधिकारी से अनुरोध किया गया कि वह मामले में दो माह का स्थगन लें तथा प्रकरण-डायरी अपनी प्रतिवेदन सहित भेजें।
>
> 17 अगस्त, 1967 को जिला दंडाधिकारी ने मामले की वापसी का विरोध करते हुए अपनी प्रतिवेदन भेजी। विधि विभाग में जिला दंडाधिकारी का पत्र डायरीकृत किए जाने से पहले ही श्री हसीबुर रहमान ने व्यवहार सहायक से सीधे फ़ाइल मंगवाई और यह आदेश दिया कि जिला दंडाधिकारी को एक तार भेजकर पंद्रह दिनों के लिए और स्थगन लिया जाए। इसके बाद विधि विभाग के अधिकारियों द्वारा मामले की गहन जाँच की गई और अपनी दिनांक 30 अगस्त, 1967 की टिप्पणी में विधि सचिव ने अभियोजन की वापसी के विरुद्ध अनुशंसा की, यह इंगित करते हुए कि प्रथम दृष्ट्या मामला है और न्याय की माँग है कि इसे न्यायालय में परखा जाना चाहिए।
>
> श्री हसीबुर रहमान ने, तथापि, जिला दंडाधिकारी तथा विधि सचिव—दोनों की सलाह की उपेक्षा करते हुए—10 सितंबर, 1967 को यह आदेश दिया कि मामला वापस ले लिया जाए। तदनुसार 18 सितंबर, 1967 को अभियोजन वापसी हेतु एक याचिका दायर की गई, किंतु विचारण न्यायालय द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया। तत्पश्चात् श्री हसीबुर रहमान ने यह निर्देश दिया कि अभियोजन वापसी की

अनुमति देने से विचारण न्यायालय द्वारा किए गए इंकार के विरुद्ध उच्च न्यायालय में एक पुनरीक्षण दायर किया जाए। तदनुसार एक पुनरीक्षण दायर किया गया, जो वर्तमान में भी उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है।

"इस प्रकार श्री हसीबुर रहमान ने अपने आधिकारिक पद और शक्ति के दुरुपयोग द्वारा दंगा एवं हत्या के एक गंभीर मामले में न्याय के प्रशासन में अनावश्यक हस्तक्षेप किया।"

जाँच आयोग की नियुक्ति से संबंधित अधिसूचना, जिसमें विभिन्न आरोपों वाली अनुसूची सम्मिलित थी, बिहार राजपत्र असाधारण में दिनांक 12 मार्च, 1968 को प्रकाशित की गई। उसी दिन अपीलकर्ता, जो बिहार के मंत्रियों में से एक था, ने आरोपों की अनुसूची सहित अधिसूचना की एक प्रति प्रकाशन हेतु प्रेस को दी। उक्त अधिसूचना, आरोपों की अनुसूची सहित, पटना से प्रकाशित 'सर्चलाइट' के दिनांक 13 मार्च, 14 मार्च तथा 15 मार्च, 1968 के अंकों में प्रकाशित की गई। केदार प्रसाद सिन्हा से संबंधित मामले की वापसी से संबंधित आरोप संख्या जे-4, सर्चलाइट के दिनांक 14 मार्च, 1968 के अंक में प्रकाशित किया गया। इसके पश्चात् दिनांक 25 मार्च, 1968 को केदार प्रसाद तथा अर्जुन पांडे द्वारा बिहार राज्य, बिहार के मुख्यमंत्री एवं मंत्रियों, बिहार सरकार के मुख्य सचिव तथा श्री सुभाष चंद्र सरकार, संपादक, एवं श्री अवधेश कुमार तिवारी, मुद्रक एवं प्रकाशक, सर्चलाइट सहित 25 व्यक्तियों के विरुद्ध न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही आरंभ करने हेतु आवेदन दायर किया गया। उक्त आवेदन में अपीलकर्ता को उत्तरदाता संख्या 3 के रूप में पक्षकार बनाया गया। यह आग्रह किया गया कि आरोप संख्या जे-4 का प्रकाशन उस विषय से संबंधित था जो उच्च न्यायालय में लंबित आपराधिक पुनरीक्षण याचिकाओं का विषय था और इसके परिणामस्वरूप न्याय के प्रवाह में हस्तक्षेप हुआ तथा दोनों आवेदकों के विरुद्ध जनमानस पूर्वाग्रही हो गया।

आवेदन पर विचार करने वाले विद्वान न्यायाधीश ने यह माना कि 25 में से 22 व्यक्तियों के विरुद्ध न्यायालय की अवमानना का कोई मामला सिद्ध नहीं हुआ है। तथापि, अपीलकर्ता को न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराया गया, क्योंकि वही व्यक्ति था जिसने आपत्तिजनक सामग्री को समाचार पत्र में प्रकाशन हेतु प्रेस को सौंपा था। सर्चलाइट के संपादक तथा मुद्रक एवं प्रकाशक को भी उक्त समाचार के प्रकाशन के कारण दोषी ठहराया गया।

हमने अपीलकर्ता की ओर से श्री बसुदेव प्रसाद को सुना है। उत्तरदाताओं की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। विषय पर सम्यक विचार करने के पश्चात् हम इस मत पर हैं कि वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जिसमें न्यायालय की अवमानना के लिए कोई कार्यवाही की जानी चाहिए।

न्यायालय की अवमानना से संबंधित विधि भली-भाँति स्थापित है। कोई भी ऐसा कार्य किया जाना या कोई लेख प्रकाशित किया जाना, जिसकी प्रवृत्ति किसी न्यायालय या न्यायाधीश को अवमानना में लाने, उसकी प्राधिकारिता को कम करने, अथवा न्याय के समुचित प्रवाह या न्यायालयों की विधिसम्मत प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने की हो, न्यायालय की अवमानना है [रेग. बनाम ग्रे ([1])]। न्यायालय की अवमानना का विधि-सिद्धांत, जैसा कि इस न्यायालय ने *ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद बनाम टी.एन.नाम्बियार ([2])* के मामले में अवलोकित किया है, न्यायालयों के उस अधिकार से उत्पन्न होता है जिसके अंतर्गत वे न्याय के प्रशासन में बाधा डालने वाले या डालने की प्रवृत्ति रखने वाले शब्दों या कृत्यों के दोषी व्यक्तियों को कारावास या जुर्माने द्वारा दंडित कर सकते हैं। यह अधिकार भारत में सभी न्यायालयों द्वारा तब प्रयोग किया जाता है जब अवमानना न्यायालय के समक्ष की जाती है, तथा उच्चतर न्यायालयों द्वारा अपने स्वयं के लिए या अपने अधीनस्थ न्यायालयों की ओर से भी, भले ही अवमानना न्यायालय के बाहर की गई हो। पूर्व में इसे अभिलेख न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का अंग माना जाता था और अब भारत के संविधान के द्वारा यह उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की शक्तियों का भाग है। अवमानना के अनेक प्रकार होते हैं। अवमानना के मुख्य रूप हैं—न्यायाधीशों का अपमान करना, उन पर आक्षेप करना, लंबित कार्यवाहियों पर ऐसी टिप्पणियाँ करना जिनसे निष्पक्ष विचारण के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न होने की प्रवृत्ति हो, न्यायालय के अधिकारियों, साक्षियों या पक्षकारों में बाधा डालना, न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करना, न्यायालय से संबद्ध अधिकारियों द्वारा कर्तव्यभंग करना, तथा न्यायाधीशों या न्यायालयों को बदनाम करना। अंतिम रूप सामान्यतः तब होता है जब किसी व्यक्ति का आचरण विधि की प्राधिकारिता और उसके प्रशासन को अनादर या उपेक्षा की स्थिति में ले जाने की प्रवृत्ति रखता है। इस प्रकार के आचरण में वे सभी कृत्य सम्मिलित हैं जो न्यायालय को विवाद, अनादर या अपमान की स्थिति में डालते हैं, उसकी गरिमा को ठेस पहुँचाते हैं, उसकी महिमा का अपमान करते हैं या उसकी सर्वोच्चता को चुनौती देते हैं।

1 [1990] 2 क्यू बी 36.

2 [1970] एससीसी 325.

इस विषय पर इस न्यायालय द्वारा *संदर्भ पी.सी.सेन*[3] के मामले में भी विचार किया गया था और यह अवलोकित किया गया था—

> "वाक् या लेखन द्वारा की गई अवमानना न्यायालय को स्वयं बदनाम करने, या वाद के पक्षकारों का अपमान करने, अथवा वाद के सुने जाने से पूर्व किसी पक्ष के पक्ष में या विपक्ष में जनमानस को पूर्वाग्रही बनाने से हो सकती है। न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे अपनी कार्यवाहियों को गलत रूप में प्रस्तुत किए जाने से सुरक्षित रखें, क्योंकि वाद के अंतिम रूप से सुने जाने से पूर्व वाद में पक्षकारों के विरुद्ध जनमानस के मन में पूर्वाग्रह उत्पन्न करना घातक परिणाम उत्पन्न करता है। न्यायालय की कार्यवाहियों को गलत रूप में प्रस्तुत करने वाले भाषण या लेखन, या किसी पक्ष के पक्ष में या विपक्ष में जनता को पूर्वाग्रही बनाने वाले, या कार्यवाही के पक्षकारों पर प्रतिकूल टिप्पणियाँ करने वाले कृत्य अवमानना की श्रेणी में आते हैं। लंबित विचारण—चाहे वह दीवानी हो या आपराधिक—के परिणाम को प्रभावित करने की प्रवृत्ति रखने वाला भाषण देना गंभीर अवमानना है। लंबित कार्यवाहियों पर की गई टिप्पणियाँ, यदि पक्षकारों या उनके अधिवक्ताओं की ओर से आती हैं, तो सामान्यतः स्वतंत्र स्रोतों से आने वाली टिप्पणियों की तुलना में अधिक गंभीर अवमानना होती हैं। लंबित कार्यवाहियों पर टिप्पणी के सभी मामलों में प्रश्न यह नहीं होता कि प्रकाशन वास्तव में हस्तक्षेप करता है या नहीं, बल्कि यह होता है कि क्या उसमें न्याय के समुचित प्रवाह में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति है। प्रश्न अवमाननाकर्ता के आशय का उतना नहीं होता, जितना यह कि क्या वह कृत्य न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करने के लिए अभिकल्पित है"।

उपर्युक्त उद्धृत मामले में, न्यायिक समिति द्वारा *देबी प्रसाद शर्मा एवं अन्य बनाम द किंग एम्परर*[4] के मामले में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों पर भरोसा किया गया था—

> "...... संदर्भ सुनने वाली पीठ द्वारा लागू किया गया परीक्षण यह था कि क्या जिन शब्दों की शिकायत की गई थी, वे परिस्थितियों में न्याय के प्रवाह तथा विधि के समुचित प्रशासन में बाधा डालने या हस्तक्षेप करने के लिए अभिकल्पित थे।"

---

3 [1969] 2 एससीआर 649.

4 एलआर 70 आई ए पृष्ठ 224.

जैसा कि *संदर्भः पी.सी.सेन* [5(2)] में अवलोकित किया गया है, यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सामान्यतः जहाँ केवल तकनीकी अवमानना होती है, वहाँ न्यायालय अवमानना के लिए दंडादेश की कार्यवाही प्रारंभ नहीं करता। उपर्युक्त संदर्भ में इस न्यायालय ने *विधि परामर्शी बनाम मेतीलाल घोष एवं अन्य* [6(3)] में मुख्य न्यायाधीश जेनकिंस की टिप्पणियों का उल्लेख किया, जिनमें कहा गया था कि अवमानना की कार्यवाही अत्यधिक संयम के साथ प्रारंभ की जानी चाहिए और कोई भी न्यायालय अपने कर्तव्य के समुचित निर्वहन में उन्हें नज़रअंदाज़ करने का सामर्थ्य नहीं रखता।

उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि न्यायालयों के पास उस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति है जो ऐसा कार्य करता है या ऐसा लेख प्रकाशित करता है जिसकी प्रवृत्ति किसी न्यायालय या न्यायाधीश को अवमानना में लाने, उसकी प्राधिकारिता को कम करने, अथवा न्याय के समुचित प्रवाह या विधि के प्रशासन में बाधा डालने की हो। चूँकि अवमाननाकर्ता का उन परिणामों को उत्पन्न करने का आशय न्यायालय की अवमानना का आवश्यक तत्व नहीं है और यह दिखा देना पर्याप्त है कि उसका कृत्य न्याय के समुचित प्रवाह और विधि के प्रशासन में बाधा डालने या हस्तक्षेप करने के लिए अभिकल्पित था, इसलिए ऐसे अनेक मामले होंगे जिनमें आरोपित अवमानना तकनीकी प्रकृति की होगी। ऐसे मामलों में न्यायालय अवमानना की कार्यवाही करने के प्रश्न पर सावधानी और न्यायिक संयम का प्रयोग करेगा। न्यायालय को परिवेशीय परिस्थितियों और मामले के भौतिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उनके समग्र अवलोकन के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना होता है कि क्या किसी उद्दंड आचरण या अन्य पर्याप्त कारण से संबंधित व्यक्ति को न्यायालय की अवमानना के लिए दंडित किया जाना चाहिए।

आइए अब उपर्युक्त कही गई बातों के प्रकाश में वर्तमान मामले के तथ्यों की जाँच करें। अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप का मूल यह है कि पूर्व में उल्लिखित दो पुनरीक्षण याचिकाओं के उच्च न्यायालय में लंबित रहने के दौरान, उसने आयोगों की जाँच अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत जारी की गई अधिसूचना—जिसमें आरोपों की अनुसूची भी सम्मिलित थी—को समाचार पत्रों में प्रकाशन हेतु प्रेस के प्रतिनिधियों को सौंप दिया। अपीलकर्ता को न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराते हुए विद्वान न्यायाधीश ने यह अवलोकन किया—

5([2]) 969 2 एससीआर 649

6([3]) आईएलआर 41 कैल 173.

"परंतु इस मामले में शरारत यह की गई कि उक्त आरोपों का प्रचार-प्रसार इस पूर्ण ज्ञान के साथ किया गया कि दोनों आपराधिक पुनरीक्षण याचिकाएँ इस न्यायालय में लंबित थीं और अभियोजन वापसी के आवेदन सद्भावनापूर्ण थे या नहीं—यह प्रश्न अभी भी इस न्यायालय द्वारा विचारणीय था। मुझे ऐसा कोई वैधानिक प्रावधान नहीं दिखाया गया है जो यह निर्धारित करता हो कि आपत्तिजनक विषयवस्तु में निहित ऐसे आरोपों को राजपत्र या सार्वजनिक प्रेस में मुद्रित किया जाना अनिवार्य है।"

उपर्युक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि उच्च न्यायालय का निर्णय इस धारणा पर आधारित था कि ऐसा कोई वैधानिक प्रावधान नहीं है जो यह अपेक्षा करता हो कि आपत्तिजनक विषयवस्तु में निहित प्रकार के आरोपों को राजपत्र में मुद्रित किया जाना चाहिए। हमारे विचार में ऐसी धारणा गलत थी। आयोगों की जाँच अधिनियम की धारा 3 की उप-धारा (1) का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है—

उपयुक्त सरकार, यदि उसकी यह राय हो कि ऐसा करना आवश्यक है, और यदि इस आशय का कोई संकल्प लोकसभा द्वारा, या यथास्थिति राज्य की विधान सभा द्वारा पारित किया गया हो, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, किसी सार्वजनिक महत्व के किसी निश्चित विषय की जाँच करने तथा अधिसूचना में विनिर्दिष्ट ऐसे कार्यों को तथा ऐसे समय के भीतर करने के प्रयोजन से, एक जाँच आयोग नियुक्त कर सकती है और ऐसा नियुक्त किया गया आयोग तदनुसार जाँच करेगा और कार्यों का संपादन करेगा।

उपर्युक्त उप-धारा का साधारण पाठ यह स्पष्ट करता है कि जाँच आयोग की नियुक्ति करने वाली अधिसूचना का राजपत्र में प्रकाशन किया जाना अनिवार्य है। यह एक अनिवार्य आवश्यकता है और इससे छूट नहीं दी जा सकती। जाँच आयोग किसी सार्वजनिक महत्व के किसी विषय की जाँच करने के उद्देश्य से नियुक्त किया जाता है। वर्तमान मामले में विभिन्न आरोपों वाली अनुसूची दिनांक 12 मार्च, 1968 की अधिसूचना का एक भाग थी और उसने सार्वजनिक महत्व के निश्चित विषयों को निर्दिष्ट किया था जिनकी जाँच आयोग द्वारा की जानी थी। अतः अनुसूची का राजपत्र में प्रकाशन वैधानिक आवश्यकता के अनुपालन के रूप में माना जाना चाहिए। राजपत्र में प्रकाशन का उद्देश्य द्विविध है—अधिसूचना का प्रचार-प्रसार करना तथा उसके विषयवस्तु की प्रामाणिकता प्रदान करना, यदि उसकी विषयवस्तु के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न हो।

वर्तमान मामले में प्रेस को प्रकाशन हेतु जो दिया गया था, वह आयोगों की जाँच अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत जारी की गई अधिसूचना थी। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अधिसूचना का केवल कोई भाग या आरोपों के कुछ अंश किसी विशेष आरोप पर बल देने के उद्देश्य से प्रेस को प्रकाशन हेतु दिए गए हों। इसके विपरीत, प्रेस को पूरी अधिसूचना दी गई थी।

आयोग के समक्ष जाँच का विषय, जैसा कि आरोप संख्या जे-4 में उल्लिखित है, यह था कि क्या श्री हसीबुर रहमान द्वारा विधि सचिव और जिला दंडाधिकारी की अनुशंसा के विरुद्ध केदार प्रसाद सिन्हा तथा अर्जुन पांडे के विरुद्ध अभियोजन की वापसी का निर्देश देते समय उनके आधिकारिक पद का कोई दुरुपयोग किया गया था। जबकि निर्णय के लिए जो प्रश्न पटना उच्च न्यायालय में लंबित आपराधिक पुनरीक्षण याचिकाओं का विषय था, वह यह था कि अभियोजन की वापसी के आवेदन को खारिज करने वाला दंडाधिकारी का आदेश विधि के विपरीत था या नहीं। दोनों विषय भिन्न और पृथक थे तथा समान नहीं थे। यह संभव है कि आपराधिक पुनरीक्षण याचिकाओं से जुड़े कुछ विषय जाँच आयोग की जाँच का भी विषय बने हों, किंतु उससे न्यायालय की अवमानना की देयता उत्पन्न नहीं होती। *जगन्नाथ राव बनाम उडीसा राज्य* [7]*(1)* के मामले में अपीलकर्ता ने आयोगों की जाँच अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत जारी उस अधिसूचना को चुनौती दी थी, जिसके द्वारा ओडिशा में मुख्यमंत्री तथा मंत्री पद पर रह चुके व्यक्तियों के विरुद्ध कुछ आरोपों की जाँच के लिए जाँच आयोग नियुक्त किया गया था। उस मामले में यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि जिन आरोपों की जाँच आयोग द्वारा की जानी थी, उनमें से एक आरोप उच्च न्यायालय में लंबित अपील का विषय था। उस संदर्भ में यह प्रश्न उठा कि क्या राज्य सरकार द्वारा जाँच आयोग की स्थापना करना या आयोग द्वारा जाँच को जारी रखना न्यायालय की अवमानना के समकक्ष होगा। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपर्युक्त कृत्य न्यायालय की अवमानना नहीं बनते और यह अवलोकन किया—

> "इस न्यायालय द्वारा *श्री राम कृष्ण डालमिया बनाम न्यायमूर्ति श्री एस आर तेंदुलकर* [8]*(1)* के मामले में यह इंगित किया गया था कि जाँच को न्यायिक जाँच के रूप में नहीं देखा जा सकता और अंततः पारित किया गया आदेश *स्वतः प्रभाव से* प्रवर्तनीय नहीं होता। अतः आयोग द्वारा की गई जाँच और अन्वेषण

7(1) [1968] _3 एस सी आर 789.

8(1) [1959] एस.सी.आर. 279.

न्यायालयों के कार्यों के अतिक्रमण के समकक्ष नहीं है। विधि न्यायालयों द्वारा किए जाने वाले विचारण तथा जाँच आयोग की जाँच का क्षेत्र पूर्णतः भिन्न है। किसी भी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि यदि जाँच आयोग सरकार की अधिसूचना द्वारा उसे संदर्भित विषयों की जाँच करता है, तो वह न्यायालय की अवमानना का दोषी होगा। आयोगों की जाँच अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत जाँच आयोग की नियुक्ति करने तथा अधिसूचना द्वारा परिकल्पित जाँच करने में आयोग अपना वैधानिक कर्तव्य निभा रहा होता है। हम पहले ही यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि जाँच आयोग की नियुक्ति करते समय सरकार सद्भावना से कार्य कर रही थी। अतः अपीलकर्ताओं का यह तर्क स्वीकार करना संभव नहीं है कि राज्य सरकार द्वारा जाँच आयोग की स्थापना करना या इस प्रकार गठित आयोग द्वारा जाँच को जारी रखना न्यायालय की अवमानना के समकक्ष होगा"।

हमारे विचार में उच्च न्यायालय का निर्णय बनाए नहीं रखा जा सकता। अतः हम अपील स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हैं और अपीलकर्ता के विरुद्ध न्यायालय की अवमानना के लिए जारी नियम को समाप्त करते हैं।

अपील स्वीकार की गई।

जी.सी.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।